पाकिस्तान का सफरनामा-७

स्तंभ/अनन्तर/जनसत्ता/७ मई, २००६

अतीत में दबे पांव

ओम थानवी

मूअनजो-दड़ो की बड़ी बस्ती में पुरातत्त्वशास्त्री काशीनाथ दीक्षित के नाम पर दो हलके हैं। पहला 'डीके-जी' है। इसके घरों की दीवारें ऊंची और मोटी हैं। मोटी दीवार का अर्थ यह लगाया जाता है कि उस पर दूसरी मंजिल भी रही होगी। कुछ दीवारों में छेद हैं जो संकेत देते हैं कि दूसरी मंजिल उठाने के लिए शायद यह शहतीरों की जगह हो। सभी घर ईंट के हैं। एक ही आकार की ईंटें- १:२:४ के अनुपात की। सभी भट्ठी में पकी हुईं। हड़प्पा से हटकर, जहां पक्की और कच्ची ईंटों का मिला-जुला निर्माण उजागर हुआ है। मूअनजो-दड़ो में पत्थर का प्रयोग मामूली हुआ। मुझे तो कहीं-कहीं नालियां ही अनगढ़ पत्थरों से ढकी दिखाई दीं।

इन घरों में दिलचस्प बात यह है कि सामने की दीवार में केवल प्रवेश द्वार बना है, कोई खिड़की नहीं है। खिड़कियां शायद ऊपर की दीवार में रहती हों। यानी दूसरी मंजिल पर। बड़े घरों के भीतर आंगन के चारों तरफ बने कमरों में खिड़कियां जरूर हैं। बड़े आंगन वाले घरों के बारे में समझा जाता है कि वहां कुछ उद्यम होता होगा। कुम्हारी का काम या कोई धातु-कर्म। हालांकि सभी घर खण्डहर हैं और दिखाई देने वाली चीजों से हम सिर्फ अंदाजा लगा सकते हैं।

घर छोटे भी हैं और बड़े भी। लेकिन सब घर एक कतार में हैं। ज्यादातर घरों का आकार तकरीबन तीस-गुणा-तीस फुट का होगा। कुछ इससे दुगने और तिगुने आकार के भी हैं। इनकी वास्तु शैली कमोबेश एक-सी प्रतीत होती है। व्यवस्थित और नियोजित शहर में शायद इसका भी कोई कायदा नगरवासियों पर आयद हो। एक घर को 'मुखिया' का घर कहा जाता है। इसमें दो आंगन और करीब बीस कमरे हैं।

डीके-बी,सी हलका आगे पूरब में है। दाढ़ी वाले 'याजक-नरेश' की मूर्ति इसी तरफ के एक घर से मिली थी। डीके-जी की ''मुख्य सड़क'' पर दक्षिण की ओर बढ़ें तो डेढ़ फर्लांग की दूरी पर 'एचआर' हलका है। सड़क उसे दो भागों में बांट देती है। ये हलका हेरल्ड हग्रीव्ज के नाम पर है जिन्होंने १९२४-२५ में राखालदास बनर्जी के बाद खुदाई करवाई थी। यहीं पर एक बड़े घर में कुछ कंकाल मिले थे, जिन्हें लेकर कई तरह की कहानियां इतिहास में बनती-बिगड़ती रहीं। प्रसिद्ध 'नर्तकी' शिल्प भी यहीं एक छोटे घर की खुदाई में निकला था। एक बड़ा घर है जिसे उपासना-केंद्र समझा जाता है। इसमें आमने-सामने की दो चौड़ी सीढ़ियां ऊपर की (ध्वस्त) मंजिल की तरफ जाती हैं। सबसे पहले भारतीय पुरातत्त्व विभाग के आखिरी- और पाकिस्तान के पहले- महानिदेशक मार्टिमर व्हीलर ने इसे 'टैंपल' की संज्ञा दी थी।

पश्चिम में- गढ़ी के ठीक पीछे- माधोस्वरूप वत्स के नाम पर वीएस हिस्सा है। यहां वह 'रंगरेज का कारखाना' भी लोग चाव से देखते हैं, जहां जमीन में ईंटों के गोल गड्ढे उभरे हुए हैं। अनुमान है कि इनमें रंगाई के बड़े बर्तन रखे जाते थे। दो कतारों में सोलह छोटे एक-मंजिला मकान हैं। एक कतार मुख्य सड़क पर है, दूसरी पीछे की छोटी सड़क की तरफ। सबमें दो-दो कमरे हैं। स्नानघर यहां भी सब घरों में हैं। बाहर बस्ती में कुएं सामूहिक प्रयोग के लिए हैं। ये कर्मचारियों या कामगारों के घर रहे होंगे।

मूअनजो-दड़ो में कुओं को छोड़कर लगता है जैसे सब कुछ चौकोर या आयताकार हो। नगर की योजना, बस्तियां, घर, कुण्ड, बड़ी इमारतें, ठप्पेदार मुहरें, चौपड़ का खेल, गोटियां, तौलने के बाट आदि सब।

छोटे घरों में छोटे कमरे समझ में आते हैं। पर बड़े घरों में छोटे कमरे देखकर अचरज होता है। इसका एक अर्थ तो यह लगाया गया है कि शहर की आबादी काफी रही होगी। दूसरी तरफ यह विचार सामने आया है कि बड़े घरों में निचली (भूतल) मंजिल में नौकर-चाकर रहते होंगे। ऐसा अमेरिकी नृतत्वशास्त्री ग्रेगरी पोसेल का मानना है। बड़े घरों के आंगन में चौड़ी सीढ़ियां हैं। कुछ घरों में ऊपर की मंजिल के निशान हैं, पर सीढ़ियां नहीं हैं। शायद यहां लकड़ी की सीढ़ियां रही हों, जो कालांतर में नष्ट हो गईं। संभव है ऊपर की मंजिल में ज्यादा खिड़कियां, झरोखे और साज-सज्जा रही हो। लकड़ी का इस्तेमाल भी बहुत संभव है पूरे घर में होता हो। कुछ घरों में बाहर की तरफ सीढ़ियों के संकेत हैं। यहां शायद ऊपर और नीचे अलग-अलग परिवार रहते होंगे। छोटे घरों की बस्ती में छोटी संकरी सीढ़ियां हैं। उनके पायदान भी ऊंचे हैं। ऐसा जगह की तंगी की वजह से होता होगा।

गौर किया कि मूअनजो-दड़ो के किसी घर में खिड़कियों या दरवाजों पर छज्जों के चिह्न नहीं हैं। गरम इलाकों के घरों में छाया के लिए यह आम प्रावधान होता है। क्या उस वक्त यहां इतनी कड़ी धूप नहीं पड़ती होगी? मुझे मूअनजो-दड़ो की जानी-मानी मुहरों के पशु याद हो आए। शेर, हाथी या गैंडा इस मरु-भूमि में हो नहीं सकते। क्या उस वक्त यहां जंगल भी थे? यह तथ्य स्थापित हो चुका है कि यहां अच्छी खेती होती थी। पुरातत्त्वी शीरीन रत्नागर का मानना है कि सिंधु-वासी कुंओं से सिंचाई कर लेते थे। दूसरे, मूअनजो-दड़ो की किसी खुदाई में नहर होने के प्रमाण नहीं मिले हैं। यानी बारिश उस काल में काफी होती होगी। क्या बारिश घटने और कुंओं के अत्यधिक इस्तेमाल से भू-तल जल भी पहुंच से दूर चला गया? क्या पानी के अभाव में यह इलाका उजड़ा और उसके साथ सिंधु घाटी की समृद्ध सभ्यता भी?

मूअनजो-दड़ो में उस रोज हवा बहुत तेज बह रही थी। किसी बस्ती के टूटे-फूटे घर में दरवाजे या खिड़की के सामने से हम गुजरते तो सांय-सांय की ध्वनि में हवा की लय साफ पकड़ में आती थी। वैसे ही जैसे सड़क पर किसी वाहन से गुजरते हुए किनारे की पटरी के अंतरालों में रह-रहकर हवा के लयबद्ध थपेड़े सुनाई पड़ते हैं। सूने घरों में हवा की लय और ज्यादा गूंजती है। इतनी कि कोनों का अंधियारा भी सुनाई दे। यहां एक घर से दूसरे घर में जाने के लिए आपको किसी घर से वापस बाहर नहीं आना पड़ता। आखिर सब खण्डहर हैं। सब कुछ खुला है। अब कोई घर जुदा नहीं है। एक घर दूसरे में खुलता है। दूसरा तीसरे में। जैसे पूरी बस्ती एक बड़ा घर हो। लेकिन घर एक नक्शा ही नहीं होता। हर घर का एक चेहरा और संस्कार होता है। भले ही वह पांच हजार साल पुराना घर क्यों न हो। हममें कमोबेश हर कोई पांव आहिस्ता उठाते हुए एक घर से दूसरे घर में बेहद धीमी गति से दाखिल होता था। मानो मन में अतीत को निहारने की जिज्ञासा ही न हो, किसी अजनबी घर में अनधिकार चहल-कदमी का अपराध-बोध भी हो। जैसे किसी पराए घर में पिछवाड़े से चोरी-छुपे घुस आए हों!

सब जानते हैं यहां अब कोई बसने नहीं आएगा। लेकिन यह मूअनजो-दड़ो के पुरातात्त्विक अभियान की ही खूबी थी कि मिट्टी में इंच-दर-इंच कंघी कर इस कदर शहर, उसकी गलियों और घरों को ढूंढ़ा और सहेजा गया है कि यह अहसास हर वक्त आपके साथ रहता है: कल कोई यहां बसता था। जरूर यह आपकी सभ्यता है। परंपरा है। मगर घर आपका नहीं है।

अनचाहे मुझे मूअनजो-दड़ो की गलियों या घरों में राजस्थान का खयाल न आए, ऐसा नहीं हो सका। महज इसलिए नहीं कि (पश्चिमी) राजस्थान और सिंध-गुजरात की दृश्यावली एक-सी है। कई चीजें हैं जो मुझे यहां से वहां जोड़ जाती हैं। जैसे हजारों साल पुराने यहां के खेत। बाजरे और ज्वार की खेती। बेर। मूअनजो-दड़ो के घरों में टहलते हुए मुझे कुलधरा की याद आई। यह जैसलमेर के मुहाने पर पीले पत्थर के घरों वाला एक खूबसूरत गांव है। उस खूबसूरती में हरदम एक गमी तारी है। गांव में घर हैं, पर लोग नहीं हैं। कोई डेढ़ सौ साल पहले राजा से तकरार पर स्वाभिमानी गांव का हर बाशिंदा रातोरात अपना घर छोड़ चला गया। दरवाजे-असबाब पीछे लोग उठा ले गए। घर खण्डहर हो गए। पर ढहे नहीं। घरों की दीवारें, प्रवेश और खिड़कियां ऐसी हैं जैसे कल की बात हो। लोग निकल गए, वक्त वहीं रह गया। खण्डहरों ने उसे थाम लिया। जैसे सुबह लोग घरों से निकले हों, शायद शाम ढले लौट आने वाले हों। हर आगंतुक को एक अप्रत्याशित अवसाद में खींच लेने वाले इस गांव पर नंदकिशोर आचार्य ने 'खोई हुई दुनिया में' नाम से मार्मिक कविताओं की एक शृंखला लिखी है। मधुकर उपाध्याय ने 'कुलधरा' नाटक लिखा है।

अतीत और वर्तमान का मुझमें यह अजीब द्वंद्व है। बाढ़ से बचने के लिए मूअनजो-दड़ो में टीलों पर बसी बस्तियां देखकर मुझे जैसलमेर, जोधपुर और बीकानेर से लेकर पोकरण-फलोदी तक के वे घर भी याद हो आए जो जमीन से आठ-दस फुट उठाकर बनाए जाते थे। पानी का न सही, रेगिस्तान में रेत की बाढ़ का अपना खतरा होता है। ऊंचे घरों में निजता रहती है और बेहतर हवादारी भी।

राजस्थान ही नहीं, गुजरात, पंजाब और हरियाणा में भी कुएं, कुण्ड, गली-कूचे, कच्ची-पक्की ईंटों के कई घर भी आज वैसे मिलते हैं जैसे हजारों साल पहले हुए।

जॉन मार्शल ने मूअनजो-दड़ो पर तीन खंडों का एक विशद प्रबंध छपवाया था। उसमें खुदाई में मिली ठोस पहियों वाली मिट्टी की गाड़ी के चित्र के साथ सिंध में पिछली सदी में बरती जा रही ठीक उसी तरह की बैलगाड़ी का भी एक चित्र प्रकाशित है। तस्वीर से उन्होंने एक सतत परंपरा का इजहार किया, हालांकि कमानी या आरे वाले पहिये का आविष्कार बहुत पहले हो चुका था। जब मैं छोटा था, हमारे गांव में भी लकड़ी वाले ठोस पहिए बैलगाड़ी में जुड़ते थे।

दुल्हन पहली दफा इसी बैलगाड़ी में ससुराल जाती थी। बाद में हमारे यहां भी बैलगाड़ी में आरे वाले पहिए जुड़ने लगे। अब तो उसमें जीप के उतारू पहिए लगते हैं। हवाई जहाज के उतारू पहिए बाजार में आने के बाद ऊंटगाड़े (गाड़ी नहीं) का भी आविष्कार हो गया है। रेगिस्तान के जहाज से हवा के जहाज का यह ऐतिहासिक गठजोड़ है। हालांकि कहना मुश्किल है कि दुल्हन की सवारी के रूप में बैलगाड़ी या ऊंटगाड़े का अब वहां कभी इस्तेमाल होता होगा!

गुलाब पीरजादा ने ध्यान दिलाया कि मूअनजो-दड़ो का अजायबघर देखना अभी बाकी है। खण्डहरों से निकल हम उस साबुत इमारत में आ गए। लेकिन प्रदर्शित सामान आपको खण्डहरों से निकल आने का एहसास होने नहीं देता। अजायबघर छोटा ही है। जैसे किसी कस्बाई स्कूल की इमारत हो। सामान भी ज्यादा नहीं है। अहम चीजें कराची, लाहौर, दिल्ली और लंदन में हैं। यों अकेले मूअनजो-दड़ो की खुदाई में निकली पंजीकृत चीजों की संख्या पचास हजार से ज्यादा है। मगर जो मुट्ठी भर चीजें यहां प्रदर्शित हैं, पहुंची हुई सिंधु सभ्यता की झलक दिखाने को काफी हैं। काला पड़ गया गेहूं, तांबे और कांसे के बर्तन, मुहरें, वाद्य, चाक पर बने विशाल मृद्-भाण्ड, उन पर काले-भूरे चित्र, चौपड़ की गोटियां, दीये, माप-तौल पत्थर, तांबे का आईना, मिट्टी की बैलगाड़ी और दूसरे खिलौने, दो पाटन वाली चक्की, कंघी, मिट्टी के कंगन, रंग-बिरंगे पत्थरों के मनकों वाले हार और पत्थर के औजार। अजायबघर में तैनात अली नवाज बताता है, कुछ सोने के गहने भी यहां हुआ करते थे जो चोरी हो गए।

एक खास बात यहां कोई भी महसूस करेगा। अजायबघर में प्रदर्शित चीजों में औजार तो हैं, पर हथियार कोई नहीं है। मूअनजो-दड़ो क्या, सिंधु सभ्यता के हड़प्पा से लेकर हरियाणा तक हथियार उस अंदाज में मिले ही नहीं हैं जैसे किसी राजतंत्र में होने चाहिए। इस बात को लेकर विद्वान सिंधु सभ्यता में शासन या सामाजिक प्रबंध के तौर-तरीके को समझने की कोशिश कर रहे हैं। वहां अनुशासन था, पर ताकत के बल पर नहीं। वे मानते हैं कोई सैन्य सत्ता शायद यहां न रही हो। मगर कोई अनुशासन जरूर था जो नगर योजना, वास्तुशिल्प, मुहर-ठप्पों, पानी या साफ-सफाई जैसी सामाजिक व्यवस्थाओं आदि में एकरूपता तक को कायम रखे हुए था। दूसरी बात, जो सांस्कृतिक धरातल पर सिंधु घाटी सभ्यता को दूसरी सभ्यताओं से अलग ला खड़ा करती है, वह है प्रभुत्व या दिखावे के तेवर का नदारद होना।

दूसरी जगहों पर राजतंत्र या धर्मतंत्र की ताकत का मुजाहिरा करने वाले महल, उपासना-स्थल, मूर्तियां और पिरामिड आदि मिलते हैं। हड़प्पा संस्कृति में न भव्य राजप्रासाद मिले हैं, न मंदिर। न राजाओं, महंतों की समाधियां। यहां के मूर्तिशिल्प छोटे हैं और औजार भी। मूअनजो-दड़ो के 'नरेश' के सिर पर जो 'मुकुट' है, शायद उससे छोटे सिरपेंच की कल्पना भी नहीं की जा सकती। और तो और, उन लोगों की नावें बनावट में मिस्र की नावों जैसी होते हुए भी आकार में छोटी रहीं। आज के मुहावरे में कह सकते हैं वह 'लो-प्रोफाइल' सभ्यता थी; लघुता में भी महत्ता अनुभव करने वाली संस्कृति।

मूअनजो-दड़ो सिंधु सभ्यता का सबसे बड़ा शहर ही नहीं था, उसे साधनों और व्यवस्थाओं को देखते सबसे समृद्ध भी माना गया है। दस लाख वर्ग किलोमीटर वाली सिंधु सभ्यता मिस्र और मेसोपोटामिया से कहीं बड़ी सभ्यता थी। फिर भी इसकी संपन्नता की बात कम हुई है तो शायद इसलिए कि इसमें भव्यता का आडंबर नहीं है। दूसरी वजह यह भी है कि मेहरगढ़ से चार-पांच हजार साल की लंबी विकासशील अवधि के बाद मूअनजो-दड़ो-हड़प्पा की परिपक्व अवस्था में पहुंची सिंधु सभ्यता पिछली सदी में ही उद्घाटित हो सकी। उसका रुतबा छह सौ साल (२५००-१९०० ई.पू.) ही रहा। कहते हैं मूअनजो-दड़ो की चरम समृद्धि का वक्फा तो सौ साल से भी कम रहा। उसकी अनबूझ लिपि अभी भी सारे रहस्य अपने में छिपाए हुए है।

सिंधु घाटी के लोगों में कला या सुरुचि का महत्त्व ज्यादा था। वास्तुकला या नगर-नियोजन ही नहीं, धातु और पत्थर की मूर्तियां, मृद्-भाण्ड, उन पर चित्रित मनुष्य, वनस्पति और पशु-पक्षियों की छवियां, सुनिर्मित मुहरें, उन पर बारीकी से उत्कीर्ण आकृतियां, खिलौने, केश-विन्यास, आभूषण और सबसे ऊपर सुघड़ अक्षरों का लिपिरूप सिंधु सभ्यता को तकनीक-सिद्ध से ज्यादा कला-सिद्ध जाहिर करता है। स्नेही पुरातत्त्ववेत्ता बृजमोहन पाण्डे के मुताबिक सिंधु सभ्यता- जिसे वे हड़प्पाई सभ्यता कहना ज्यादा पसंद करते हैं- की खूबी उसका सौंदर्य-बोध है, ''जो राज-पोषित या धर्म-पोषित न होकर समाज-पोषित था।'' शायद इसीलिए आकार की भव्यता की जगह उसमें कला की भव्यता दिखाई देती है।

अजायबघर में रखी चीजों में कुछ सुइयां भी हैं। खुदाई में तांबे और कांसे की तो बहुत सारी सुइयां मिली थीं। काशीनाथ दीक्षित को सोने की तीन सुइयां मिलीं जिनमें एक दो-इंच लंबी थी। समझा गया है कि यह बारीक कशीदेकारी में काम आती होंगी। याद करें, नर्तकी के अलावा मूअनजो-दड़ो के नाम से प्रसिद्ध जो दाढ़ी वाले 'नरेश' की मूर्ति है, उसके बदन पर आकर्षक गुलकारी वाला दुशाला भी है। आज छापे वाला कपड़ा 'अजरक' सिंध की खास पहचान बन गया है, पर कपड़ों पर छपाई का आविष्कार बहुत बाद का है। खुदाई में सुइयों के अलावा हाथीदांत और तांबे के सुए भी मिले हैं। जानकार मानते हैं कि इनसे शायद दरियां बुनी जाती थीं। हालांकि दरी का कोई नमूना या साक्ष्य हासिल नहीं हुआ है।

वह शायद कभी हासिल न हो, क्योंकि मूअनजो-दड़ो में अब खुदाई बंद कर दी गई है।

कैप्शन

१. मूअनजो-दड़ो की साढ़े चार हजार साल पुरानी मुख्य सड़क
२. एक सुव्यवस्थित जल निकास
३. मूअनजो-दड़ो के अजायबघर में चाक पर बना एक चित्रित मृद्-भाण्ड